Part I Hons.
Paper - II
Group. A

## शिक्षा का उद्देश्य एवं आदर्श

Discuss Aims and Ideals of Education in Ancient India.?

ns

प्राचीनकाल में शिक्षा का स्वरूप अत्यन्त सुव्यवस्थित था। प्राचीनकाल में व्यक्तियों के उत्थान के लिए विभिन्न प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। उस काल में भौतिक और आध्यात्मिक जीवन के निर्माण तथा विभिन्न उत्तरदायित्वों को निभाने के लिए शिक्षा की नितांत आवश्यकता थी। शिक्षा से ही मनुष्य में ज्ञान उत्पन्न होता है तथा शास्त्र और विवेक से शिक्षा सम्पन्न होती है और शिक्षा से ज्ञान का उदय होता है। ज्ञान अथवा विद्या से मुक्ति प्राप्त होती है। ज्ञान के आलोक से मनुष्य का जीवन आलोकित होता है।

मनुष्य के जीवन में विद्या का महत्वपूर्ण स्थान है। विद्या के बिना मनुष्य का व्यक्तित्व संकुचित है और जीवन बोझिल हो जाता है। अज्ञानता अन्धकार के समान है। इसीलिए अज्ञानी मनुष्य का जीवन अंधकारमय है एवं उसके कर्मों की कोई महत्ता नहीं है। ज्ञान मनुष्य का तीसरा नेत्र है। जो उसके समस्त तत्वों के मूल को समझने में समर्थ करता है। तथा उसे सही कार्यों की ओर प्रवृत्त करता है। जीवन की समस्त बाधाएँ एवं कठिनाईयाँ ज्ञान के कारण समाप्त हो जाती है। इसीलिए यह कहा गया है कि जिसे ज्ञान का प्रकाश उपलब्ध नहीं वह नेत्रहीन है।

शिक्षा से मनुष्यों को जीवन सम्बन्धी सिद्धांतों एवं आचरणों को समझने में आसानी होती है। उसका शरीर और मन शिक्षा से ही परिष्कृत और पवित्र होता है।

विद्या और ज्ञान की प्राप्ति से ही मनुष्य श्रेष्ठ होता है और उत्तम भी माना जाता है। विद्या माता की तरह मनुष्य की रक्षा करती है, पिता के सदृश्य शुभकार्य में स्नेह करती है। पत्नी के समान दुःखों

Scanned with CamScanner

को समाप्त करती है। और कल्पलता के सदृश्य प्रसन्नता प्रदान करती है। शिक्षा से मनुष्य का जीवन समृद्ध होता है। उसकी बुद्धि और प्रज्ञा सुदृढ़ और प्रांजल होती है। मनुष्य किसी मनुष्य से बड़ा उसी स्थिति में होता है जब उसकी बुद्धि और मस्तिष्क शिक्षा द्वारा तीव्र और उच्च होती है। इसलिए विद्याहीन मनुष्य को पशु कहा गया है। मनुष्य का आत्मिक विकास संसारिकता से आध्यात्मिकता की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति गुण-अवगुण को परखने की शक्ति तथा उचित अनुचित के विश्लेषण की शक्ति शिक्षा से ही सम्भव रही है, मनुष्य का जीवन शिक्षा एवं ज्ञान से ही धर्मप्रवण, नैतिक मूल्यों से युक्त होता है। विद्या अर्जन से व्यक्तियों व्यक्ति आत्मनिर्भरता तो प्राप्त करता ही है साथ ही परिवार और समाज के निर्माण में योग प्रदान करता है मनुष्य के धार्मिक वृत्तियों का उत्थान उसके सामाजिक उत्तरदायित्वों का निष्पादन उसके सांस्कृतिक जीवन का उत्थान शिक्षा के प्रधान उद्देश्य है।

## 1. मनुष्य के धार्मिक वृत्तियों का उत्थान:—

मनुष्य के जीवन में धार्मिक वृत्तियों का गरिमामय स्थान है जिसके चलते मनुष्य का जीवन शक्ति प्रवण और धर्म प्रवण होता है। इस तरह की भावना मनुष्य के जीवन में प्राचीन काल से ही रही है। विद्यार्थियों के जीवन में शक्ति और धर्म की भावना का प्रवेश शिक्षा के माध्यम से होता रहा है। ब्रह्मचारी द्वारा दैनिक क्रिया, संध्योपासन, व्रतों का अनुपालन धर्म समन्वित उत्सव आदि का अनुगमन उसकी धार्मिक वृत्तियों के उत्थान में योग देते रहे हैं। जीवन के उत्थान और विकास के लिए आत्मविश्वास और आत्मिक शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। जो धार्मिक भावना से भी सबल होती है

Scanned with CamScanner

सामान्यतः विद्यार्थी के लिए सन्ध्यावन्दना, पूजापाठ स्नान आदि धर्म के अन्तर्गत ग्रहीत किये जाये हैं। वे। सत्यभाषण को प्रमुख माना गया था। सत्य नहीं बोलने से सभी धर्मो का क्षय होता है। मनुष्य के जीवन में तप, दान, आर्जव, अहिंसा और सत्यव्रत अनिवार्य माने गये क्योंकि धर्ममूलक प्रवृत्तियाँ इन्हीं तत्वों से प्रेरित होती हैं। धर्म का तीन आधार था —— यज्ञ, तप, और आर्याय कुल

२ **मनुष्य के चरित्र का उत्थान:** —— इसके अंतर्गत व्यक्ति नैतिक क्रियाओं को पूरा करता है। सही रास्ते का अनुसरण करता है। चरित्र और आचरण का इतना महत्वपूर्ण स्थान है था कि समस्त वेदों का ज्ञाता विद्वान सच्चरिता के अभाव में मानवीय नहीं था, किन्तु केवल गायत्री मंत्र का ज्ञाता पंडित अपनी सच्चरित्रता के कारण मानवीय और पूजनीय था। सच्चरित्रता व्यक्ति की भूषण मानी गयी थी। सत्यकर्मो से ही चरित्र का उत्थान माना गया था। ये सत्यकर्म नैतिक मूल्यों से ही संचालित होते थे। शिक्षा अवधि में ही मनुष्य में चरित्र और आचरण को उन्नत करने का प्रयास किया जाता था। शिक्षा के माध्यम से मनुष्य अपनी तामसी और पाशविक प्रवृत्तियों पर नियंत्रण रख सकता था। तथा सत्-असत् का भेद करने में अपने को समर्थ पा सकता था। जब मनुष्य का सत् का पूर्ण ज्ञान हो जाता था तब वह अपने चरित्र और आचरण को तदनुकूल बना लेता था तथा उसके चरित्र का उत्थान होना शुरू हो जाता था।

३ **मनुष्य के व्यक्तित्व का उत्थान:** —— शिक्षा के माध्यम से व्यक्तित्व का उत्कर्ष होता है। शिक्षा प्राप्ति से ही व्यक्ति विभिन्न कर्तव्यों का पालन कर सकने में समर्थ हो सकता है। इससे उसके भीतर आत्मसंयम, आत्मचिंतन, आत्मविश्वास, आत्मविश्लेषण, विवेक भावना, न्यायप्रवृत्ति एवं आध्यात्मिक वृत्ति का उदय होता है। शिक्षा प्रारंभ करने के पूर्व

Scanned with CamSc

विद्यार्थियों के उपनयन संस्कार में आत्मविश्वास को जगाया जाता है।

४ **सामाजिक उत्तरदायित्वों का निष्पादन:—** शिक्षित होने के कारण व्यक्ति अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों को अच्छी तरह निष्पादित करता है। पुत्र, पति, एवं पिता के रूप में वह विभिन्न उत्तरदायित्वों का निभाता है। विद्यार्थी के समावर्तन के उपदेश में इसका साफतौर से उल्लेख किया गया था "सत्य बोलना, धर्म का आचरण करना, स्वाध्याय में प्रमाद न करना, आचार्य को दीक्षणा दे लेने पर सन्तति उत्पादन की परम्परा ~~प्रस्पपरा~~ विच्छेद से न करना, सत्य से न हटना, धर्म से न हटना, मंगल कार्य में प्रमाद न करना, महान बनने के सुअवसर से न चुकना, पठन-पाठन के कर्तव्य में प्रमाद न करना, देवता और पितरों के कार्य में प्रमाद न करना, माता को देवी समझना, पिता को देवता समझना, आचार्य को देवता समझना, अतिथि को देवता समझना एवं दोषरहित कार्यों को करना" इस कथन से स्पष्ट है कि मनुष्य के अनेकानेक उत्तरदायित्व थे जिन्हें वह शिक्षा प्राप्ति के बाद निभाता था।

५ **सांस्कृतिक जीवन का उत्थान:—** शिक्षा के माध्यम से सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन का उत्कर्ष होता है। शिक्षा से ही अतीत की संस्कृति वर्तमान में जीती है तथा पहले से चली आती हुई परम्परा जीवित हो उठती है। अपने सन्तति को शिक्षा द्वारा ही शिक्षित करना और प्राचीन सांस्कृतिक की ओर प्रवृत्त करना इसका प्रधान लक्ष्य था। वैदिक साहित्य की शिक्षा और उसका प्रसार इसका मुख्य लक्ष्य था। वेदों को कंठस्थ करना और उसको अच्छी तरह से दिमाग में संचित करके रखना उस समय के विद्यार्थी का प्रधान कार्य था। साथ ही साथ संस्कृति का यह प्रधान उद्देश्य भी।

Scanned with CamSc

संस्कृतिक जीवन के विकास के लिए त्रिऋण की अनिवार्यता मानी गयी है। प्रत्येक हिन्दू परिवार में इन तीनों ऋणों को समय पर पूर्ति करना प्रधान कर्तव्य था। ये ऋण थे- देव ऋण, पितृऋण, ऋषि ऋण। इन ऋणों से मनुष्य को मुक्त होना आवश्यक था। देव ऋण से तब मुक्ति मिलती थी जब यज्ञ सम्पन्न किये जाते थे। ऋषि ऋण से छुटकारा ग्रंथों का सोपांग रूप से अध्ययन करने से मिलता था और पितृऋण संतान उत्पन्न करने और समुचित शिक्षा प्रदान करने से उतरता था।

उपरोक्त विवेचन से प्रकट होता है कि मनुष्य का आत्मिक विकास संसारिकता से अध्यात्मिकता की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति, गुण - अवगुण को परखने की शक्ति उचित अनुचित के विश्लेषण की वृत्ति शिक्षा से ही सम्भव रही है।

———— x ————